अध्यात्म की वर्णमाला

युवाचार्य महाप्रज्ञ

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

अध्यात्म की वर्णमाला

युवाचार्य महाप्रज्ञ

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

संपादक

मुनि धनंजयकुमार

प्रथम संस्करण : १९९३

मूल्य : ₹10 00

प्रकाशक : जैन विश्व भारती, लाडनूं

मुद्रक : जैन विश्व भारती प्रेस, लाडनूं-३४१ ३०६।

ADHYATMA KEE VARNMALA

Yuvacharya Mahaprajna

₹10 00

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

प्रस्तुति

आज का सुपरिचित शब्द है अध्यात्म और वास्तव में बहुत अपरिचित शब्द है अध्यात्म। आत्मा है तो अध्यात्म है। अध्यात्म आत्मा से शून्य कभी नहीं होता। आत्मा में जो हो रहा है, उसका ज्ञान है अध्यात्म। ज्ञान शून्य अध्यात्म अर्थहीन शब्द जैसा हो जाता है। प्रस्तुत पुस्तक में आत्मा तक पहुंचने की वर्णमाला टंकित है। वर्णमाला समूचे ज्ञान की मातृका है। अध्यात्म की मातृका है अपने आपको जानना, समझना और अपने आपको जानने की पगडंडियों पर चलना। विश्वास है—ये पगडंडियां रुकती नहीं हैं, लक्ष्य तक पहुंचा देती है।

१७-६-९३
जैन विश्व भारती,
लाडनूं (राज०)

युवाचार्य महाप्रज्ञ

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

चक्षुष्मान् !

तुम शरीरधारी हो। इसका अर्थ है—भौतिकता तुम्हारी पहली पहचान है। तुम्हारी भौतिकता में किसी को संदेह नहीं है। तुम आध्यात्मिक हो, यह वक्तव्य सही नहीं है। तुम्हें अध्यात्मिक बनना है, यह कहा जा सकता है। आत्मा तुम्हारी पहली पहचान नहीं है। स्थूल जगत् और स्थूल दृष्टि।

तुम्हारा शरीर भी स्थूल है इसलिए इस जगत् में जो मूल्य शरीर का है, वह आत्मा का नहीं है। 'पहलो सुख निरोगी काया'—यह कहावत है। 'पहलो सुख निरोगी आत्मा'—यह कहावत नहीं है। **'शरीरमाद्यं खलु धर्मसाधनम्'**—पहले शरीर और फिर आत्मा की बात।

तुम भौतिक हो; इस सचाई को खुले दिल से स्वीकार करो। भौतिकता तुम्हें निसर्ग से प्राप्त है। उसका अपलाप करना क्यों चाहते हो ? उसमें जीते हुए भी तुम आध्यात्मिक बन पाओगे। इसलिए बन सकते हो कि इस भौतिक कलेवर के भीतर एक आत्मा है, एक चेतना है। उससे तुम संचालित हो। यदि संचालन-सूत्र को पकड सको तो अध्यात्म की वर्णमाला का पहला अक्षर पढ़ सकोगे।

शरीरविज्ञानी मानते हैं—शरीर की सारी प्रवृत्तियों—बोलना, चलना आदि-आदि का संचालन मस्तिष्क से होता है। मस्तिष्क का संचालक कौन है ? यह अभी एक पहेली है। तत्काल मृत व्यक्ति का मस्तिष्क अवयव की दृष्टि से वैसा का वैसा है पर उसने शरीर का

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

संचालन करना बंद दिया है। ऐसा क्यों किया ? विज्ञान मौन है। अध्यात्म का उत्तर होगा—मस्तिष्क प्राणशक्ति से संचालित था। प्राण-शक्ति को पैदा कर रहे थे सूक्ष्म शरीर। वे इस स्थूल शरीर को छोड़ कर चले गए। वे जुड़े हुए हैं चेतना के साथ। चेतना चली गई, साथ-साथ वे भी चले गये। प्राणशक्ति का कार्य बन्द हुआ, कोशिकाओं का विभाजन और पुनर्जनन बंद हो गया।

अध्यात्म और भौतिक या पौद्गलिक नगर के बीच कोई दुर्लंघ्य दीवार नहीं है। इन दोनों में भेद है, विरोध नहीं है। किसी अपेक्षा से संबंध भी है। यदि तुम आध्यात्मिक बनना चाहते हो तो आत्मा और पुद्गल—इन दोनों को समझना जरूरी है।

आत्मा के विषय में अध्ययन करो और पुद्गल को भी पढ़ो। इन दोनों के सम्बन्धों और संगम-बिन्दुओं को भी जानने का प्रयत्न करो। कुछ आध्यात्मिक व्यक्ति भी कहते हैं—साधक को पढ़ने की क्या जरूरत है ? हमारा चिन्तन इससे भिन्न है। अध्यात्म के साधक को काफी गहरा ज्ञान होना चाहिए। इसके बिना वह अध्यात्म की उच्च भूमिकाओं पर आरोहण नहीं कर सकता। भगवान् महावीर का प्रवचन इस विषय में बहुत उपयोगी है।

धर्म के तीन अंग हैं—स्वाध्याय, ध्यान और तप। इन तीनों का समन्वय ही तुम्हें अध्यात्म की दिशा में आगे बढ़ा सकेगा।

राणावास
१ जून, १९९०

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

चक्षुष्मान् !

तुम स्वाध्याय की साधना करो। पहले स्वाध्याय के प्रति रुचि पैदा करो फिर स्वाध्याय करो। रुचि है तो समय अपने आप निकल आएगा। यदि रुचि नहीं है तो समय न मिलने का बहाना बना का बना रहेगा। जिसमें रुचि है, वह काम नहीं होता, ऐसा कब होता है ! वही काम नहीं होता, जिसमें हमारी रुचि जागृत नहीं है। रुचि को जगाना एक कला है। समाचार पत्र पढ़ने में रुचि होती है। उपन्यास और कथा-कहानी पढ़ने में रुचि होती है। रेडियो सुनने और टी. वी. देखने में भी रुचि होती है।

मैं जिस स्वाध्याय की चर्चा कर रहा हूं, वह इन सबसे परे है। जिस पुस्तक से अपने बारे में जानकारी मिले, अपनी आदतों और वृत्तियों को समझने, परखने तथा बदलने का मार्गदर्शन मिले, जिससे तत्त्व का बोध मिले, उस पुस्तक को पढ़ना, उसमें प्रतिपादित विषय पर मनन करना, चिंतन करना और अभ्यसनीय का अभ्यास करना, यह है हमारा विकसित स्वाध्याय।

समाचारपत्रों और उपन्यासों को पढ़ना मैं बुरा नहीं मानता किन्तु स्वाध्याय के बिना समाचारपत्रों और उपन्यासों को पढ़ना खतरनाक भी मानता हूं। यदि तुम्हारा मस्तिष्क अध्यात्म से प्रशिक्षित नहीं है तो समाचार मूल्य (न्यूज वेल्यू) वाली घटनाएं तुम्हें प्रभावित कर देंगी। हिंसा, आवेश, वासना का तूफान जीवन को अस्त-व्यस्त कर डालेगा। कुछ भी पढ़ो तो बहुत सावधानी से पढ़ो। केवल रुचिकर

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

विषय को मत पढ़ो। रुचि किधर ले जाएगी, इसकी समीक्षा करके पढ़ो।

मैं मानता हूं, रुचि के अभाव में अध्यात्म और तत्त्वज्ञान का विषय नहीं पढ़ा जाता इसलिए उस विषय में रुचि पैदा करो। वह रुचि सही दिशा और सही मार्ग पर ले जाएगी।

रुचि पैदा करने के लिए मूल्यांकन की दृष्टि का विकास करो। उपयोगिता का अवधारण और परिणाम का विश्लेषण करो। अज्ञान अवस्था में एक प्रकार की रुचि होती है। ज्ञान की अवस्था में वह बदल जाती है, दूसरे प्रकार की पैदा हो जाती है। संस्कृत का विद्यार्थी रुचि की समस्या से जूझता है। पूज्य कालूगणी कहते थे—संस्कृत पढ़ना अलूनी शिला को चाटना है। कुछ दिन पढ़ने में बिल्कुल मन नहीं लगता। पढ़ते-पढ़ते रुचि पैदा हो जाती है, फिर उसे छोड़ने का जी नहीं करता।

प्रत्येक विद्या, साधना, व्यवसाय और प्रवृत्ति के साथ शायद यही घटित होता है। आसन करने में तुम्हारी रुचि नहीं है। यदि तुम जान लो कि शरीर के लिए आहार जितना जरूरी है उतना ही जरूरी है आसन। फिर रुचि अपने आप पैदा होगी।

ध्यान में तुम्हारी रुचि नहीं है। इसके पीछे भी अज्ञान का हाथ है। यदि यह ज्ञान हो कि एकाग्र होना उतना ही जरूरी है जितना जरूरी है जीना, श्वास लेना। फिर ध्यान के प्रति रुचि कैसे नहीं होगी? आहार के लिए ज्ञान जरूरी है। आसन के लिए ज्ञान जरूरी है और ध्यान के लिए भी ज्ञान जरूरी है। यह ज्ञान आएगा कहां से? उसका मूल स्रोत है—स्वाध्याय।

कोई-कोई व्यक्ति ऐसा होता है, जिसमें सहज प्रतिभा होती है, अन्तर्दृष्टि जागृत हो जाती है, पर सब ऐसे नहीं होते। सामान्य आदमी की दृष्टि स्वाध्याय से विकसित होती है इसलिए उसका सही

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

मूल्यांकन करो और पढ़ने की आदत डालो। दिन-रात में दो-तीन घंटा अवश्य पढ़ो। चुनाव करो। बहुत ग्रन्थ हैं। उन ग्रन्थों को प्राथमिकता दो जो जीवन जीने की कला का बोध करा सकें, जो अवांछनीय आदतों को बदलने और वांछनीय आदतों के निर्माण में सहयोग कर सकें।

मार्गदर्शन में पहला स्थान गुरु का है तो दूसरा स्थान ग्रन्थ का है। कभी-कभी एक सूक्त जीवन की दिशा को बदल देता है। तुम जानते हो—जिसे गुरु उपलब्ध नहीं है और ग्रन्थ उपलब्ध नहीं है, वह निरालम्ब मार्ग पर चल रहा है। पता नहीं कब नीचे गिर जाए। स्वाध्याय एक शक्तिशाली आलम्बन है। उसकी कभी उपेक्षा मत करो।

पाली
१ जुलाई, १९९०

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

२

चक्षुष्मान् !

स्वाध्याय करो, इसका हृदय तुम्हें समझना है। इसका पहला चरण है पाठ। वह पहला है, अन्तिम नहीं है। पहली सीढी पर चढ़ना अनिवार्य है किन्तु मंजिल तक पहुंचने के लिए वह पर्याप्त नहीं है। वहां पहुंचने के लिए दूसरी, तीसरी सीढी का आरोहण करना होता है।

स्वाध्याय का दूसरा सोपान है मनन। पहले तुम पढो—उच्चारण शुद्धि करो और शब्द का अर्थ समझो। उसके बाद उसका मनन करो।

एक सामान्य सूत्र है—आधा घण्टा खाओ, साढ़े तीन या चार घंटे तक पचाओ। यह प्रसिद्ध सूक्त तुमने सुना होगा—आदमी खाने से पुष्ट नहीं होता, पचाने से पुष्ट होता है।

आहार की प्रक्रिया में जो स्थान पाचन का है, वही स्थान स्वाध्याय की प्रक्रिया में मनन का है। पाचन ठीक होता है तब बनता है रक्त, मांस, मेद, अस्थि, मज्जा और शुक्र। ये सब बनाते हैं शरीर को शक्तिशाली। यह क्यों ? इसका तात्पर्य क्या है ? इसका सम्बन्ध केवल अस्तित्व से है या उपयोगिता से भी है ? मानवीय सम्बन्धों के विकास में इसका कितना मूल्य है ? ये मनन के पहलु हैं। इसके द्वारा ज्ञान का कल्पतरु शतशाखी बन जाता है। जो लोग मनन करना नहीं जानते, उनका ज्ञान-वृक्ष कोरा तना बनकर रह जाता है, उसके शाखा-प्रशाखा का विस्तार नहीं होता।

इस बात को तुम उदाहरण से समझो। सूत्र का एक वचन

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

है—**धम्मो मंगलमुक्किट्ठं**—धर्म उत्कृष्ट मंगल है। यह सूत्रकार का वचन है। इसको हमने जान लिया। अब ज्ञान की परम्परा को आगे बढ़ाओ। धर्म मंगल कैसे ? मंगल वह होता है, जिससे अनिष्ट टले, इष्ट की प्राप्ति हो। मनुष्य के लिए इष्ट है सुख। वह सुख चाहता है, दुःख नहीं चाहता, यह सामान्य अवधारणा है। खाने से सुख मिलता है। क्या खाना भी धर्म है ? खाने के साथ दुःख भी जुड़ा हुआ है। धर्म वह होता है, जिससे सहज सुख मिले। खाने का सुख काल्पनिक, आरोपित या माना हुआ है।

तुम मनन करो—पदार्थ का भोग आसक्ति उत्पन्न करता है। जितनी आसक्ति उतना भावात्मक तनाव। जितना भावात्मक तनाव उतना मानसिक तनाव या मानसिक दुःख। धर्म है चेतना की अनुभूति। जितनी चेतना की अनुभूति उतनी अनासक्ति। जितनी अनासक्ति उतनी भावात्मक प्रसन्नता। जितनी भावात्मक प्रसन्नता उतनी मानसिक निर्मलता। जितनी मानसिक निर्मलता उतना सहज सुख। धर्म से इष्ट सधता है। वह सहज होगा, वस्तु-सापेक्ष नहीं होगा।

तुम गोता लगाना सीखो। गोता लगाए बिना कोई भी समुद्र के तल में रहे हुए मुक्ताओं और रत्नों को नहीं पा सकता। मनन का अर्थ है—स्वाध्याय के महासागर में डुबकियां लगाना, अतल गहराइयों में पहुंचकर वह पाना, जो समुद्र के तट पर बैठे को नहीं मिलता। भले तुम दिन में दो-चार पृष्ठ पढ़ो अथवा पांच-दस श्लोक पढ़ो। कोई समस्या नहीं, यदि तुम उन पर चिन्तन-मनन करते रहो।

आगम की स्वाध्याय पद्धति का प्रसिद्ध सूत्र है—**'नत्थिजिणवयणं नय विहूणं'** अर्हत् का एक भी वचन नयविहीन नहीं है इसलिए प्रत्येक वचन पर ध्यान दो—यह किस अपेक्षा से कहा गया है ? अपेक्षा को समझने का प्रयत्न नहीं करोगे तो तुम्हारा मन आग्रह से भर जाएगा। फिर पकड़ बन जाएगी, लचीलापन नहीं रहेगा।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

आदमी को सत्य के प्रति विनम्र होना चाहिए। अपेक्षा या नयदृष्टि का प्रयोग नहीं करने वाले व्यक्ति की रीढ़ की हड्डी अकड़ जाती है। वह पूरे चिन्तन-शरीर को रुग्ण बना देती है। तुम अपने चिन्तन को स्वस्थ रखने के लिए सापेक्षदृष्टि या नयदृष्टि का विकास करो, यह नयदृष्टि का विकास ही मनन की पद्धति है। इसकी अनिवार्यता का अनुभव करो।

पाली
१ अगस्त, ९०

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

चक्षुष्मान् !

कुछ होना चाहते हो तो कुछ करो। प्रारम्भ में होना और करना—दो होते हैं। मध्य में होना और करना—एक बन जाते हैं। मन चंचल है, यह शिकायत सब लोग करते हैं पर वे एकाग्रता के लिए कुछ नहीं करते, इसलिए उनकी शिकायत मृत्युशय्या तक बनी रहती है। तुमने प्रेक्षा का मर्म समझा है। तुम इस शिकायत को नहीं पालोगे।

मन चंचल है, इसमें कोई संदेह नहीं। चंचलता इसकी प्रकृति है। मिटेगी भी नहीं। तुम्हें उसकी मात्रा को कम करना है। जितनी-जितनी एकाग्रता की मात्रा बढ़ेगी, उतनी ही तुम्हारी आंतरिक चेतना अभिव्यक्त होने लगेगी।

चंचलता को कम करने के लिए अभ्यास अत्यन्त अनिवार्य है। तुम अभ्यास न करो, कुछ भी समय न लगाओ और सफलता चाहो, यह कैसे संभव बनेगा? अभ्यास करते-करते एक साधारण आदमी जौहरी बन जाता है। उसकी दृष्टि सध जाती है। वह देखते ही रत्न को परख लेता है।

अभ्यास से अनेक विद्याएं आयत्त होती हैं। तुम इस स्वायत्तता के मंत्र को पढ़ो और एकाग्रता का अभ्यास करो। प्रारम्भ में चाहे बीस मिनट या आधा घंटा लगाओ पर लगाओ अवश्य। **'अवंध्यं दिवसं कुर्यात्'**—इस सूक्त को भूलो मत। वह आधा घंटा का अभ्यास तुम्हें एकाग्रता की भूमि तक पहुंचा देगा और धीमे-धीमे निर्विचार चेतना

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

का स्पर्श भी होने लगेगा।

अभ्यास के क्रम में सबसे पहले कायोत्सर्ग का चुनाव करो। कायसिद्धि के बिना मन की सिद्धि नहीं हो सकती। शरीर को स्थिर करना सीखो। पद्मासन, अर्द्ध-पद्मासन या पालथी की मुद्रा में बैठ जाओ। बाईं हथेली पर दाईं हथेली रखो और उसे नाभि के पास स्थापित करो। रीढ़ की हड्डी बिल्कुल सीधी और गर्दन सीधी। आंखें अधमुंदी हुई या मुंदी हुई। श्वास मंद। इस मुद्रा में पहले पांच मिनट स्थिरता की साधना करो। बिल्कुल हिलो-डुलो मत। प्रतिमा की भांति स्थिर बने रहो। इस अवस्था में शिथिल होने का भी अभ्यास करो। दाएं पैर के अंगूठे पर ध्यान दो, पूरे भाग को देखो। शिथिलता का सुझाव दो। 'शिथिल हो रहा हूं' इसे मन ही मन तीन बार दोहराओ। फिर अनुभव करो—शिथिल हो गया है। इस प्रक्रिया को प्रत्येक अवयव पर—पैर से सिर तक दोहराओ। इस प्रकार कायोत्सर्ग की साधना से स्थिरता, शिथिलता और जागरूकता—तीनों का विकास होने लगेगा।

पाली
१ सितम्बर, ९०

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

चक्षुष्मान् !

शरीर का स्थिरता और शिथिलता बहुत आवश्यक है। इससे भी अधिक आवश्यक है शरीर की मूर्च्छा का त्याग। कायोत्सर्ग को शवासन मत बनाओ। केवल स्थिरता और शिथिलता तक मत रुको। कायोत्सर्ग का प्राण-तत्त्व है—शरीर की मूर्च्छा से मुक्ति, देहाध्यास या देहासक्ति का विसर्जन।

प्रेक्षाध्यान शरीर और मन के घेरे में नहीं है। वह उनसे परे जाने की पद्धति है, आत्मा तक पहुंचने की पद्धति है। शरीर-मूर्च्छा की स्थिति में आत्मा तक पहुंचने का दरवाजा खुलता नहीं।

तुम कायोत्सर्ग का सही-सही मूल्यांकन करो। शरीर से सेवा लो और उसे सेवा दो, पर ममत्व से संधि मत करो। यही है कायोत्सर्ग का मर्म। इसे केवल शरीर की साधना मत बनाओ; विश्राम, स्वास्थ्य और चिकित्सा की सीमा में मत बांधो। यदि ऐसा करोगे तो मूल लक्ष्य छूट जाएगा। तुम्हारा मूल लक्ष्य है—आत्मा का साक्षात्कार करना। वह तभी सम्भव होगा जब दैहिक मूर्च्छा का बंधन टूटेगा।

कायोत्सर्ग की मुद्रा में अन्यत्व-अनुप्रेक्षा का प्रयोग करो। शरीर से आत्मा की भिन्नता का बोध करो, अनुभव करो। 'आत्मा भिन्न है', 'आत्मा चेतन है, शरीर अचेतन है', इस शब्दावली को पांच या दस मिनट तक दोहराओ। दोहराते समय ध्यान उसके साथ जुड़ा रहे। दोहराते-दोहराते शब्द कम हो जाएं—शब्दों के उच्चारण में अन्तराल आ जाए, भावधारा प्रखर बन जाए, शब्द अनुभूति के स्तर

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

तक पहुंच जाए।

इस भूमिका में कायोत्सर्ग और अन्यत्व-अनुप्रेक्षा—दोनों एकमेक हो जाते हैं। दूध में चीनी अपने अस्तित्व को विलीन कर देती है वैसे ही कायोत्सर्ग में अन्यत्व-अनुप्रेक्षा का विलय हो जाता है। इसे बदल कर भी कह सकते हैं—अन्यत्व-अनुप्रेक्षा में कायोत्सर्ग का का विलय हो जाता है। यह विलय की साधना प्रेक्षाध्यान की पहली भूमिका है।

पाली
१ अक्टूबर, ९०

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

चक्षुष्मान् !

शरीर एक संहति है। कोशिका जैसे सूक्ष्म और हाथ-पैर जैसे स्थूल अवयवों से निर्मित संहति। यह एक इकाई है, अनेक इकाइयों का एक संगठन। शरीर का कायोत्सर्ग-अवयवी-कायोत्सर्ग है। पहले इसी का अभ्यास करो। अभ्यास के सधने पर अवयव-कायोत्सर्ग का अभ्यास प्रारम्भ करो। सर्वप्रथम कंठ का कायोत्सर्ग करो। कंठ हमारे शरीर का एक महत्त्वपूर्ण अवयव है। वह स्वर-यंत्र का स्थान है। उसमें थायराइड और पेराथायराइड ग्लैण्ड हैं। विशुद्धि-केन्द्र भी वहीं है।

मन की चंचलता और स्वर-यंत्र का घनिष्ट सम्बन्ध है। भाषा को कभी विभक्त नहीं किया जा सकता। स्मृति करो, भाषा अनिवार्य होगी। कल्पना करो, वहां भी भाषा अपरिहार्य है। भाषा के बिना चिन्तन की बात सोची ही नहीं जा सकती। स्मृति, कल्पना और चिंतन—ये सब मन की प्रवृत्तियां हैं। यदि तुम मन की चंचलता को कम करना चाहो तो अनावश्यक स्मृति, अनावश्यक कल्पना और अनावश्यक चिंतन से बचो। अनावश्यक से बचने का उपाय है—भाषा-मुक्त रहने का अभ्यास।

भाषा-युक्त होने का अर्थ है चंचलता की ओर जाना। भाषा-मुक्त होने का अर्थ है मन से परे जाना। पहली स्थिति काम्य नहीं है और दूसरी स्थिति अभ्यास साध्य है। तुम पहले बीच का मार्ग चुनो। भाषा का अतिप्रयोग न हो, इस स्थिति का निर्माण करने के

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

लिए कंठ का कायोत्सर्ग बहुत आवश्यक है ।

कायोत्सर्ग की मुद्रा—समग्र कायोत्सर्ग करो, पूरे शरीर को स्थिर और शिथिल बनाओ। दो मिनट उसमें लगाओ फिर कंठ पर ध्यान केन्द्रित करो। कंठ भाग को अधिक शिथिल करो। श्वास मंद। केवल कंठ का अनुभव। इस स्थिति में कम से कम पांच मिनट रहो। यह प्रयोग बहुत लम्बे समय तक किया जा सकता है। कंठ का कायोत्सर्ग साधना की दृष्टि से एक पूर्ण प्रयोग है।

पाली
१ नवम्बर, ९०

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

चक्षुष्मान् !

एक साथ पूरे शरीर का कायोत्सर्ग करो, यह बहुत अच्छा प्रयोग है। कायोत्सर्ग का यह अखंड प्रयोग है। उसे खंड-खंड में भी किया जा सकता है।

कंठ का कायोत्सर्ग कामवृत्ति के संतुलन के लिए बहुत उपयोगी है।

जीभ का कायोत्सर्ग मन की चंचलता को कम करने का एक महत्त्वपूर्ण प्रयोग है।

कायोत्सर्ग की मुद्रा में बैठ दोनों होठ बन्द करो। ऊपर-नीचे के दांत परस्पर मिले नहीं। जीभ को अधर में रखो। ध्यान जीभ पर केन्द्रित करो।

मनुष्य मौलिक वृत्तियों के साथ चलता है। काम की प्रवृत्ति एक शक्तिशाली मनोवृत्ति है। उसे संतुलित या अनुशासित रखने के लिए जीभ का कायोत्सर्ग एक रहस्यपूर्ण वास्तविकता है।

मनुष्य का शरीर रहस्यों से भरा हुआ है। उसमें नाड़ीतंत्र के ज्ञानतंतु और कर्मतंतु, ग्रन्थितंत्र के रसायन तथा उनके पारस्परिक सम्बन्ध एवं सहयोग नाना प्रकार के आचरण और व्यवहारों के प्रेरक बनते हैं। उन सब आचरणों और व्यवहारों को नियमित, संतुलित एवं अनुशासित रखने के लिए अवयवी-कायोत्सर्ग का भी अभ्यास करो। पैर का अंगूठा और एक-एक अंगुली—इन सब अवयवों पर पृथक्-पृथक् कायोत्सर्ग का अभ्यास करो।

एक्यूपंक्चर और एक्यूप्रेशर की पद्धति में संवादी-बिन्दुओं

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

(पोइन्ट्स) पर प्रयोग किया जाता है। उसमें सुई अथवा दबाव (प्रेशर) का प्रयोग किया जाता है। कायोत्सर्ग में संवादी-बिन्दुओं पर ध्यान कर उन्हें सक्रिय बनाया जा सकता है।

पूरे शरीर का कायोत्सर्ग करना अत्यावश्यक है किन्तु विशेष प्रयोजन हो तो खंड या अवयव-कायोत्सर्ग का भी अभ्यास करो। अपने अनुभव से इस विषय में प्रगति की जा सकती है।

अवयव की चिकित्सा अथवा उसकी कार्यक्षमता बढ़ानी हो तो उसके लिए अवयव-कायोत्सर्ग विशेष उपयोगी बनता है। कायोत्सर्ग को 'सर्वदुःखविमोक्षणं'—सब दुःखों से छुटकारा देने वाला कहा गया है। यह बहुत रहस्यपूर्ण वाक्य है। इसका रहस्य चिंतन, मनन, अनुभव और प्रयोग के द्वारा ही समझा जा सकता है।

राणावास
१ दिसम्बर, ९०

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

चक्षुष्मान् !

तुम अंतर्मुख होना चाहते हो। बहिर्मुखता का जीवन बहुत जिया है। गहरे में उतरकर उसका अनुभव किया है। अब तुम्हारे मन में एक नई ललक पैदा हुई है। अपने भीतर में झांकूं, इस भावना ने तुम्हें अंतर्मुखता की ओर उत्प्रेरित किया है।

तुम जानना चाहते हो—भीतर जाने का प्रवेश-द्वार कौन-सा है। त्वचा है भीतर जाने का द्वार। रोमकूपों से प्राणवायु का संग्रहण होता है और वह भीतर चली जाती है। दोनों नथुनों से श्वास भीतर जाता है। मुंह से भोजन और पानी का भीतर प्रवेश होता है।

हमारे शरीर में भीतर जाने के अनेक प्रवेश-द्वार हैं। अंतर्मुखता का सम्बन्ध इनके साथ नहीं है। उसका सम्बन्ध है चेतना के साथ। हमारी चेतना भीतर ही है फिर उसे भीतर जाने के लिए प्रवेश-द्वार खोजने की क्या आवश्यकता है ? यह एक पहेली है। इस पहेली को बुझाना है।

हमारी चेतना बाह्य जगत् के पदार्थों से जुड़ी हुई है, उसमें आसक्त है इसलिए वह बार-बार बाहर की ओर दौड़ती है। उसका आकर्षण है बाहर के प्रति। भीतर रहना या अपने स्थान में रहना उसे पसन्द नहीं है। इस स्थिति को बदलने, पदार्थ के प्रति मूर्च्छा या आसक्ति को कम करने का अर्थ है—चेतना का भीतर में प्रवेश। इसका माध्यम है—अंतर्यात्रा का प्रयोग।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

इड़ा (पेरासिम्पेथेटिक नर्वस सिस्टम) और पिंगला (सिम्पेथेटिक नर्वस सिस्टम) के प्राण-प्रवाह चेतना को बहिर्मुखता की ओर ले जाते हैं। सुषुम्ना का प्राण-प्रवाह व्यक्ति को अंतर्मुखी बनाता है इसीलिए सुषुम्ना के प्रवाह-काल में ध्यान करना अच्छा माना जाता है।

अंतर्यात्रा के प्रयोग में चेतना को सुषुम्ना के प्राण-प्रवाह के साथ जोड़ा जाता है। इसका धीमे-धीमे अभ्यास करते-करते बाह्य पदार्थों की आसक्ति कम हो जाती है। आत्मा के प्रति आकर्षण बढ़ने लगता है।

अंतर्यात्रा प्रेक्षाध्यान का एक महत्त्वपूर्ण प्रयोग है। इसका तुम सही-सही मूल्यांकन करो। मस्तिष्क के बाद हमारे शरीर का सबसे महत्त्वपूर्ण अंग है सुषुम्ना। इसीमें विशिष्ट चैतन्य केंद्र उपलब्ध हैं। चित्त की यात्रा शक्ति केंद्र से ज्ञान केंद्र तक होती है तब अपने आप कुछ विशेष आनन्द की अनुभूति होती है।

तुम इसका प्रयोग स्वतंत्र रूप से भी कर सकते हो। ध्यान के पूर्ण प्रयोग के साथ पांच मिनट का समय इसके लिए दिया जाता है। स्वतंत्र रूप से इसका प्रयोग बीस मिनट तक किया जा सकता है। इसका अनुभव नया आयाम खोलेगा।

पाली
१ जनवरी, १९९१

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

चक्षुष्मान् !

तुम विश्वास करो—श्वास के दर्शन का। वह बाहर से भीतर जाता है और भीतर से बाहर आता है। यह क्रम निरन्तर चलता है। आवेश शान्त होते हैं तब श्वास अपनी नियमित गति से चलता है। आवेश की अवस्था में उसकी गति तेज हो आती है, संख्या बढ़ जाती है।

उसकी गति को तीन रूपों में समझा जा सकता है—स्वाभाविक गति, तेज गति और मंद गति।

दो सेकेण्ड में श्वास का पूरक होता है और दो सेकेण्ड में उसका रेचन होता है, यह श्वास की स्वाभाविक गति है। इसके अनुसार एक मिनट में श्वास की संख्या पन्द्रह होती है। आवेश की अवस्था में श्वास की गति तेज हो जाती है। एक मिनट में उसकी संख्या अठारह-बीस से लेकर पचास-साठ तक हो जाती है। दीर्घ श्वास के अभ्यास द्वारा श्वास की संख्या में कमी की जा सकती है। उसकी गति मंद हो जाती है। श्वास की संख्या एक मिनट में बारह-दस तथा दो या एक तक पहुंच जाती है।

तुम श्वास पर ध्यान दो, उसे देखो। उसकी गति अपने आप मंद हो जाएगी। संकल्प करो, श्वास लम्बा लो, गति मंद हो जाएगी। मन की एकाग्रता का यह पहला चरण है।

श्वास की चंचलता जितनी कम, उतनी मन की चंचलता कम। श्वास और मन की चंचलता का गहरा सम्बन्ध है।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

श्वास प्रेक्षा में केवल श्वास को लम्बा ही मत करो, उसे देखने का अभ्यास करो। कोरा दीर्घश्वास श्वास का व्यायाम हो सकता है, ध्यान नहीं। ध्यान तब होता है, जब मन श्वास के साथ जुड़ता है।

ध्यान नथुनों के भीतर टिकाओ। श्वास को लम्बा करो। वह भीतर जाए, तब भीतर जा रहा है, इसका अनुभव करो। जब बाहर आये, तब बाहर आ रहा है, इसका अनुभव करो। बीच-बीच में विचार आएंगे, श्वास का आलम्बन छूट जाएगा और मन विचारों में उलझ जाएगा। उस समय जागरूकता साथ देगी। जो विचार आए, उन्हें द्रष्टाभाव से देखो। रोकने का आयास मत करो। पूरी जागरूकता के साथ मन को फिर श्वास के साथ जोड़ो।

इस प्रयोग में जागरूकता का बहुत मूल्य है। जागरूकता का सम्बन्ध रुचि से है, संकल्प से है। यदि तुम्हारी रुचि श्वास दर्शन में प्रगाढ़ है तो जागरूकता अपने आप रहेगी। विचार का व्यवधान होते ही वह अपना काम शुरू कर देगी और मन फिर श्वास के साथ जुड़ जाएगा। संकल्प के द्वारा भी ऐसा ही घटित होता है। यह श्वास-प्रेक्षा का पहला प्रयोग है। इसका विकास अनेक चरणों में किया जा सकता है।

दवेर
१ फरवरी, १९९१

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

चक्षुष्मान् !

तुम इस सचाई को जानते हो—श्वास का अर्थ है जीवन और जीवन का अर्थ है श्वास। जीवन और श्वास को कभी पृथक् नहीं किया जा सकता।

स्वरूप की दृष्टि से जीवन और श्वास एक नहीं हैं। जीवन का अर्थ है प्राणशक्ति और श्वास का अर्थ है प्राणशक्ति का ईंधन। दूसरे शब्दों में जीवन को श्वास-प्राण और ईंधन को श्वास कहा जा सकता है। श्वास और श्वास-प्राण—दोनों सर्वथा भिन्न नहीं हैं और सर्वथा अभिन्न भी नहीं हैं। श्वास का ईंधन मिलता है, तब प्राणशक्ति प्रज्वलित रहती है।

तुम यदि प्राणवान् रहना चाहो तो दीर्घश्वास प्रेक्षा का प्रयोग अवश्य करो। समवृत्तिश्वास प्रेक्षा उसका अगला चरण है। इसमें भी श्वास लम्बा लेना और लम्बा छोड़ना आवश्यक है। सिर्फ नथुनों की स्थिति बदलेगी। दीर्घश्वास में दोनों नथुनों से श्वास लिया जाता है। इसमें पहले बाएं नथुने से श्वास लो और दाएं से रेचन करो। फिर दाएं से श्वास लो और बाएं से रेचन करो। इसके साथ चित्त को जोड़ो।

यह प्रयोग नाड़ीतंत्रीय संतुलन के लिए बहुत उपयोगी है। इसमें इड़ा और पिंगला—दोनों का संतुलन बनता है, क्रिया और मन—दोनों में सामंजस्य बैठता है।

कोरी क्रिया तनाव पैदा करती है। क्रियाशून्य मन जीवन-चक्र

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

को पूर्ण नहीं बनाता। क्रिया और मन—दोनों का योग आवश्यक है। समवृत्ति श्वास प्रेक्षा का प्रयोग—दोनों के समन्वय का प्रयोग है।

तुम मन की एकाग्रता के लिए इसका अभ्यास बार-बार करो। यह एकाग्रता की आनुपूर्वी है। नमस्कार महामंत्र के जप के लिए आनुपूर्वी का प्रयोग किया जाता है। उसमें मन की एकाग्रता सधती है। ठीक वैसे ही समवृत्ति श्वास प्रेक्षा में मन एकाग्र होता है।

शारीरिक दृष्टि से भी इसका बहुत मूल्य है। दायां स्वर गर्म होता है, बायां स्वर ठंडा होता है। उष्णता और शीतलता—दोनों सन्तुलित रहे, यह स्वास्थ्य की अपेक्षा है। इसकी पूर्ति समवृत्ति श्वास प्रेक्षा से होती है।

हठयोग में जो अनुलोम-विलोम प्राणायाम है, समवृत्ति श्वास प्रेक्षा उससे जुड़ी हुई है। अनुलोम-विलोम केवल प्राणायाम है। उसकी प्रेक्षा करो, उसे देखो, उसकी गति पर ध्यान केंद्रित करो, वह ध्यान का प्रयोग बन जाएगा। समवृत्ति श्वास प्रेक्षा कोरा प्राणायाम नहीं, ध्यान का प्रयोग है।

आमेट
१ मार्च, १९९१

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

चक्षुष्मान् !

मन बहुत चंचल है। इसका हम सबको अनुभव है। चंचलता का सम्बन्ध श्वास के साथ है। श्वास छोटा, मन अधिक चंचल। श्वास लम्बा, मन की चंचलता कम। श्वास का संयम, मन अमन हो जाता है।

श्वास के अनेक प्रयोग हैं। उनमें सर्वाधिक महत्त्वपूर्ण प्रयोग है श्वास का संयम (कुम्भक)। श्वास का निरोध संवर है। यह काय संवर का एक भाग है। मन का संवर हो, उससे पहले काय का संवर अपेक्षित है।

निर्विचार होने के लिए विचार का आलम्बन उपयोगी नहीं होगा। विचार की उच्छृंखलता को संयत करने के लिए विचार का आलम्बन उपयोगी हो सकता है। निर्विचार का मार्ग सर्वथा भिन्न है। विचार की प्रेक्षा करो, उसे देखने का अभ्यास करो, निर्विचार बन जाओगे। श्वास संयम के साथ विचार को देखने का अभ्यास करो, विचार थम जाएंगे।

दूसरा मार्ग यह है—विचार को देखने के लिए मन को संकल्पित करो। श्वास अपने आप थम-सा जाएगा। तुमने प्रयोग किया है इसलिए तुम अनुभव के स्तर पर जान सकते हो—देखने का एक अर्थ है सहज ही श्वास का संयम। जैसे-जैसे द्रष्टाभाव गहरा होगा, श्वास की गति मंद हो जाएगी और मंद होते-होते संयम की स्थिति तक पहुंच जाएगी।

कुछ लोग कहते हैं—प्रेक्षाध्यान की पद्धति में अनेक प्रयोग हैं।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

हम क्या-क्या करें ? इतने प्रयोग क्यों करें ? एक उलझन-सी बनी रहती है। वास्तव में यह उलझन नहीं है। यह यथार्थ का अनुगमन है।

हमारे शरीर में शक्ति के अनेक केन्द्र हैं। चेतना और आनन्द के भी केन्द्र अनेक हैं। वे सब केन्द्र एक ही उपाय से जागृत नहीं होते। उनके जागरण के पृथक्-पृथक् सूत्र हैं। यथासमय यथाविधि उन सबका आलम्बन आवश्यक है। उन सब आलम्बनों में एक सर्वसाधारण आलम्बन है श्वास का संयम। प्रारम्भ में इसका आलम्बन लो, धीरे-धीरे यह आलम्बन स्वयं निरालम्ब में बदल जाएगा।

निरालम्ब ध्यान, निर्विचार ध्यान और श्वास संयम—तीनों को एक ही भाषा में अभिव्यक्त किया जा सकता है—नाम अनेक तात्पर्य एक। श्वास प्रवृत्ति का हेतु है और निवृत्ति का हेतु है श्वास-संयम। जीवन-चक्र को केवल प्रवृत्ति से मत चलाओ। उसे निवृत्ति का सहारा भी दो। यह प्रवृत्ति और निवृत्ति का समन्वय एक नई दिशा का उद्घाटन करेगा।

जयपुर
१ अप्रेल, १९९१

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

चक्षुष्मान् !

शरीर को देखो। शरीर रहस्यों का रत्नाकर है। उसमें जो है, वह ज्ञात कम है, अज्ञात अधिक है। उसमें जो हो रहा है, वह भी ज्ञात कम है, अज्ञात अधिक है।

शरीर प्रेक्षा का अर्थ है—अज्ञात को ज्ञात करना। चंचल मनःस्थिति में जो नहीं जाना जाता, वह एकाग्रता की स्थिति में जान लिया जाता है। शरीर में प्रतिक्षण परिवर्तन होता रहता है। इसका मूल हेतु है कर्म का विपाक। हमारे शरीर में कर्म-विपाक के अनेक केन्द्र हैं। उनमें आने वाले सूक्ष्म रसायन प्रभावित करते हैं नाड़ीतंत्रीय और ग्रन्थितंत्रीय रसायनों को।

शरीर को देखो, केवल द्रष्टाभाव से देखो। न राग और न द्वेष, केवल दर्शन। यह दर्शन कर्म-विपाक से होने वाली प्रतिक्रिया से बचाएगा। शुभ-विपाक से होने वाले संवेदन राग की मूर्च्छा को सघन बना सकते हैं। अशुभ विपाक से होने वाले संवेदन द्वेष की मूर्च्छा को सघन बना सकते हैं।

पुण्य के फल को कैसे भोगें ? पाप के फल को कैसे भोगें ? यह बहुत बड़ा विवेक है। एक व्यक्ति पुण्य के फल में अति आसक्त होकर प्रचुर पाप का बंध कर लेता है। दूसरा व्यक्ति पुण्य का फल भोगने में आसक्त नहीं होता, वह बंध को प्रतनु कर देता है।

एक व्यक्ति अशुभ कर्म के विपाक को रोते-रोते झेलता है, वह दुःख के हेतुओं का और अधिक संचय कर लेता है। दूसरा व्यक्ति अशुभ

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

कर्म के विपाक को समभाव से झेल लेता है, वह अशुभ बंध को प्रतनु बना देता है।

शरीर को देखना एक आध्यात्मिक प्रयोग है। शरीर को हर आदमी देखता है पर राग-द्वेष मुक्त भाव से हर कोई नहीं देख सकता।

तुम अभ्यास करो केवल देखने का, केवल द्रष्टा होने का। यद्यपि यह ध्यान की पूर्व अवस्था है, धारणा है। प्रारम्भ में इसका बहुत उपयोग है। यह सीमा नहीं है। इससे आगे बढ़ना है। ध्यान की भूमिका में जाना है। यह ध्यान की पृष्ठभूमि है इसलिए इसका सम्यक् प्रयोग करो।

जयपुर
१ मई १९९१

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

चक्षुष्मान् !

इस स्थूल शरीर में झांककर देखो। आत्मा, चैतन्य, कर्म-पुद्गल, कर्म के विपाक, भावधारा, चित्त, मन और प्राण—ये सब इसी शरीर में हैं। इस शरीर की दृश्य धातुएं हैं—रक्त, मांस, मज्जा आदि। दृश्य से अदृश्य बहुत अधिक है।

अदृश्य को दृश्य करने का अभ्यास करो। एकाग्रता जितनी गहरी, उतना ही अदृश्य दृश्य के रंगमंच पर आ जाता है। निर्विचार रहो। यह निर्विचार ध्यान साक्षात्कार का महाद्वार है।

आत्मा शरीर में व्याप्त है। उसकी सघनता सर्वत्र समान नहीं है। कहीं चैतन्य विरल है और कहीं सघन। प्राण-शक्ति भी पूरे शरीर में व्याप्त है। उसके सघन और विरल क्षेत्र बने हुए हैं। चेतना और प्राण के सघन क्षेत्र का नाम है चैतन्य केन्द्र।

चैतन्य केन्द्रों को सक्रिय करने का अभ्यास करो। उन पर आए हुए आवरण को दूर करो, अन्तश्चेतना प्रगट होगी। अभी जो ज्ञान हो रहा है, वह इन्द्रियों के माध्यम से हो रहा है। फिर जो ज्ञान प्रगट होगा, उसका माध्यम इन्द्रियां नहीं होंगी। ये विकसित चैतन्य-केन्द्र नए करण बन जाते हैं, अतीन्द्रिय चेतना के स्रोत बन जाते हैं।

चैतन्य केन्द्र पर लम्बे समय तक ध्यान करो। प्रारम्भ दो-चार मिनट से करो। धीरे-धीरे आगे बढ़ो। अभ्यास करते-करते एक-डेढ़ घंटा तक पहुंच जाओ। यह स्थिति ही आत्मानुभूति या ध्यान की वास्तविक अनुभूति तक ले जाएगी।

शरीर में अनेक चैतन्य केन्द्र हैं। कुछ केन्द्र अन्तर्ज्ञान के विकास

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

से संबद्ध हैं। कुछ केन्द्र शक्ति-विकास से संबद्ध हैं और कुछ केन्द्र मोह-विलय से संबद्ध हैं। चैतन्य केन्द्र प्रेक्षा इन सबको जागृत करने का प्रयोग है। इसे गहराई से समझो। उन्हें जागृत करने के लिए दीर्घ-कालीन अभ्यास करो। इसमें त्वरा काम नहीं देगी। अधैर्य लक्ष्य तक नहीं पहुंचाएगा।

कषाय-विजय, भावात्मक संतुलन, मानसिक एकाग्रता, भाव-विशुद्धि और मृदु-व्यवहार—ये साधन हैं। इनके साथ ध्यान का अभ्यास चले तो अवश्य लक्ष्य तक पहुंच सकते हो।

जयपुर
१ जून, १९९१

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

चक्षुष्मान् !

जो होना है, उस पर ध्यान केन्द्रित करो। जो पाना चाहते हो उस पर दृष्टि टिकाओ। शक्ति, आनन्द और ज्ञान—इस त्रिपदी से सम्पन्न होना, इस त्रिपदी के विकास की साधन-सामग्री को पाना है। तुम शरीरधारी हो, इसलिए शरीर की शक्ति की उपेक्षा कर जी नहीं सकोगे। गंभीर चिन्तन करो, दृष्टिकोण बदल जाएगा।

तुम प्राणी हो, प्राणशक्ति की उपेक्षा कर कुछ कर नहीं सकोगे। जीवन का मूल आधार भोजन है। वह प्राणशक्ति को सहारा देता है। काम करने में जो शक्ति का व्यय होता है, वह उसकी पूर्ति कर देता है। शक्ति का मूल केन्द्र सुरक्षित है, तब तक ऐसा होता है। मूल केन्द्र के चलित हो जाने पर भोजन का अर्थ भी कम हो जाता है। शक्ति के मूल स्रोत को स्वस्थ और सुव्यवस्थित रखने के लिए चैतन्य केन्द्र का ध्यान बहुत उपयोगी है।

शक्ति केन्द्र, स्वास्थ्य केन्द्र और तैजस केन्द्र—यह शक्ति का त्रिकोण है। इसकी परिक्रमा करने वाला दीन-हीन और विमनस्क नहीं होता। यदि तुम हीन भावना से बचना चाहते हो, अवसाद (डिप्रेशन), भय, उदासी आदि मानसिक विकारों से मुक्त रहना चाहते हो तो शक्ति के त्रिकोण की साधना करो।

शक्ति केन्द्र और स्वास्थ्य केन्द्र—इन दो की साधना ही इन्द्रिय संयम अथवा ब्रह्मचर्य है। तैजस केन्द्र की साधना आहार-संयम है। इन्द्रिय-संयम की साधना करो, शक्ति केन्द्र और स्वास्थ्य केन्द्र अपने

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

आप जागृत हो जाएंगे। इन दो चैतन्य केन्द्रों पर ध्यान करो, इन्द्रिय संयम अपने आप सध जाएगा। आहार का संयम करो, तैजस केन्द्र जागृत हो जाएगा। तैजस केन्द्र पर ध्यान करो, आहार की आसक्ति अपने आप घट जाएगी।

तैजस केन्द्र की साधना रहस्यपूर्ण साधना है। योग के आचार्यों ने इसे रहस्यमय ही रखा है। आज का युग वैज्ञानिक युग है। वैज्ञानिकों ने अनेक रहस्यों को अनावृत कर दिया है। योग के रहस्य भी जन साधारण तक पहुंचें, केवल योगी तक ही सीमित न रहें, यह वर्तमान की अपेक्षा है। स्वयं साधना या अभ्यास करो। जो अनुभव उपलब्ध हो, उसे दूसरों तक भी पहुंचाओ।

लाडनूं
१ जुलाई, १९९१

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

चक्षुष्मान् !

आनन्द जीवन का वह छंद है, जिसकी स्वच्छंदता से आदमी दिव्य अनुभूति में चला जाता है। तुम खोज करो उस स्रोत की, जहां से आनन्द का निर्झर गतिशील हो रहा है। हृदय का परिपार्श्व बहुत चमत्कारिक है। तीर्थंकर की प्रतिमा के हृदय-देश में जो स्वस्तिक का चिह्न है, वह उसी की अभिव्यक्ति है।

वासुदेव कृष्ण ने कहा—अर्जुन ! मैं हृदय-देश में रहता हूं।

हृदय-देश आत्मा का वह स्थान है, जहां आत्मा का अविरल प्रवाह है। यह बाह्य ग्रन्थि का स्थान है। हठयोग की भाषा में अनाहत चक्र का स्थान है। प्रेक्षाध्यान में इसकी पहचान आनन्द केन्द्र से होती है।

इस प्रदेश पर ध्यान करो, सहज ही आनन्द स्फुरित होने लगेगा। यह आनन्द पदार्थ-सापेक्ष नहीं है, किसी वांछित वस्तु की उपलब्धि से होने वाला नहीं है। यह आंतरिक आनन्द है, जो शरीर के रसायनों तथा चेतना के योग से निष्पन्न होता है।

आनन्द केन्द्र पर मन को एकाग्र करो। श्वास मंद और विचार शान्त। विचार या विकल्प आए तो उन्हें द्रष्टाभाव से देख लो। न उन्हें रोकने का यत्न करो और न उनमें उलझो। जागरूकता रहे और विचार की प्रेक्षा चले। इस क्रम में एकाग्रता सघन हो जाएगी।

जीवन में अनेक समस्याएं, अनेक परिस्थितियां आती हैं। उन्हें झेलने की क्षमता विकसित करना परम पुरुषार्थ है। आनन्द केन्द्र की सक्रियता में वह पुरुषार्थ प्रकट होता है। विषम परिस्थिति दुःख से

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

नहीं झेली जाती। उसे झेलने के लिए कोई आनन्द का स्रोत चाहिए और वह भी परिस्थिति की दुःखदता से अधिक सुखद।

तुम सुख की धार को मत देखो। वह बहती है, क्षय हो जाती है और सूख जाती है। उस स्रोत से संपर्क स्थापित करो, जो असीम है, अमाप्य है। संपर्क चिरकालिक हो। केवल स्पर्श न हो।

आनन्द केन्द्र की दीर्घकालीन साधना अवश्य फलित होती है। हर्ष और शोक—दोनों से परे एक नई चेतना जागती है। आंख खुली रहे या बंद, बातचीत चले या मौन, स्मृति उसकी बनी रहे। यह सतत स्मृति जागरण के लिए पर्याप्त है।

लाडनूं
१ अगस्त ९१

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

चक्षुष्मान् !

निर्मलता जीवन की महान् उपलब्धि है। मन का चंचल होना समस्या है। उससे बड़ी समस्या है मन की मलिनता। क्रोध मन को मलिन बनाता है, यह कहना उचित होगा अथवा मन मलिन हो तब क्रोध पैदा होता है। ये दोनों उक्तियां सच हैं।

मलिन मन का आर और पार—दोनों स्वच्छ नहीं होते। अस्वच्छ मन का अर्थ है मानसिक तनाव।

तनाव से बचना चाहते हो तो सर्वांग आसन का प्रयोग करो। भुजंगासन का अभ्यास करो और उसके प्रतिपक्ष में मत्स्यासन का प्रयोग। थायराइड ग्रन्थि का व्यायाम होगा, तनाव मिटेगा, मन की मलिनता में कमी आएगी।

कण्ठ और मन के संबंध का अध्ययन करो। मन का संबंध चन्द्रमा से है। चन्द्रमा का प्रभाव-क्षेत्र है कण्ठ। कण्ठ के मध्य भाग में है विशुद्धि केन्द्र। इस चैतन्य केन्द्र पर ध्यान करो, इससे चयापचय की क्रिया ही संतुलित नहीं होगी, वासनाओं और वृत्तियों का भी परिष्कार होगा।

बहुत आवश्यक है परिष्कार। वासनाओं के उन्मूलन की बात सोचना बहुत अच्छी बात है पर सहसा संभव नहीं है। संभव है परिष्कार।

जो संभव है, उसकी साधना प्रारम्भ करो। गर्म खिचड़ी के बीच में हाथ मत डालो। उसे किनारे से खाना शुरू करो।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

बहुत बार ऐसा होता है कि मनुष्य बहुत बड़ी कल्पना कर लेता है और वह सफल नहीं होती तब उदास या निराश हो जाता है। वह निराशा उसे साधना से विमुख बना देती है।

धीमे-धीमे चलता है, वह पहुंच जाता है। बहुत जल्दी करता है, वह बीच में ही अटक जाता है। विशुद्धि केन्द्र वह चैतन्य केन्द्र है, जो मंजिल तक पहुंचाने में साथ देता है। उसका साथ लो और आगे बढ़ो।

लाडनूं
१ सितम्बर ९१

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

चक्षुष्मान् !

जो कुछ भी करो, 'वह शक्ति के द्वारा किया जा रहा है', इसे स्मृति में रखो। क्रियाशील रहना चाहो और शक्ति न हो, यह क्रियाशीलता के साथ न्याय नहीं है।

तैजस केन्द्र शक्ति का स्रोत है उसे सक्रिय बनाना आवश्यक है पर विवेक के साथ। वासना प्रबल न बने, निषेधात्मक वृत्तियों का उद्दीपन न हो और शक्ति जाग जाए—ऐसा गुर खोजना है। यह अनुभव के द्वारा भी खोजा जा सकता है और किसी अनुभवी व्यक्ति के द्वारा उपलब्ध भी किया जा सकता है।

खोज और उपलब्धि—दोनों के लिए श्रम करो। वह श्रम अवश्य सफलता की ओर ले जाएगा। अध्यात्म की साधना लाभदायी है, साथ-साथ उलझन भरी भी है। शायद ही कोई लाभ ऐसा होता है, जिसके साथ उलझन न हो।

तैजस केन्द्र का अधिवृक्क ग्रन्थि के साथ संबंध है। इस केन्द्र के परिपार्श्व में अनेक वृत्तियां जागती हैं। उन वृत्तियों के प्रति जागरूक रहकर तैजस केन्द्र की साधना करो।

शक्ति वृत्तियों को पोषण न दे। उसका उपयोग ऊर्ध्ववर्ती चैतन्य केन्द्रों के जागरण में हो।

नाभि शरीर का मध्य भाग है। उसकी शक्ति नीचे की ओर प्रवाहित होती है तो वासनाएं दीप्त होती हैं। वह ऊर्ध्व भाग की ओर प्रवाहित होती है तब वासनाओं का शमन और चैतन्य का विशिष्ट

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

जागरण होता है।

तुम्हारा ध्यान केवल नाभि पर ही केन्द्रित न हो। ध्यान का मुख्य केन्द्र पृष्ठरज्जु में है। नाभि की सीध में जो पृष्ठरज्जु का भाग है, ध्यान वहां तक पहुंचे। आगे से प्रारम्भ करो, पीछे वहां तक पहुंच जाओ, तभी उसकी सफलता दृष्टिगत होगी।

लाडनूं
१ अक्टूबर, १९९१

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

चक्षुष्मान् !

प्राण का मूल्यांकन करो। उससे संचालित है शरीर का समूचा क्रियाकलाप। उसकी ऊर्जा के बिना एक अंगुली भी नही हिलती। चरण जहां का तहां रह जाता है। वाक् अवाक् बन जाती है। उन्मेष और निमेष थम जाता है।

प्राणऊर्जा का एक मुख्य केन्द्र है नासाग्र—नाक का अग्र भाग। महावीर की मुद्रा का एक अंग है नासाग्र पर दृष्टि का स्थिर विन्यास —दृशौ च नासा नियते स्थिरे च।

तुम चाहते हो—ध्यान-काल में विचारों का सिलसिला टूट जाए, निर्विचार ध्यान की भूमिका उपलब्ध हो जाए। नासाग्र पर ध्यान करो, तुम्हारी चाह धीमे-धीमे पूर्ण होने लगेगी। जैसे-जैसे ध्यान जमेगा, वैसे-वैसे शक्तिकेन्द्र पर नियंत्रण सधेगा। हठयोग का एक सिद्धांत है कि नासाग्र पर ध्यान करने से मूल नाड़ी तन जाती है।

यह प्रयोग श्वास प्रेक्षा से भिन्न है। श्वास प्रेक्षा में नथुनों के आसपास या भीतर श्वास पर ध्यान केन्द्रित होता है। इस प्रयोग में श्वास पर ध्यान देना अपेक्षित नहीं है। वह अपने आप लम्बा और मंद हो जाता है।

नासाग्र पर खुली आंख से भी ध्यान किया जा सकता है। वह अनिमेष प्रेक्षा या त्राटक है। उससे आंखों पर तनाव आता है। दृष्टि-शक्ति कमजोर हो, अवस्था प्रौढ़ हो, उस स्थिति में वह करणीय नहीं है इसलिए पूरी समीक्षा किए बिना यह प्रयोग न किया जाए। मुंदी

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

हुई आंखों की अवस्था में यह प्रयोग किया जा सकता है।

मन की चंचलता को कम करना अथवा एकाग्रता का अभ्यास करना बहुत अच्छा है पर मन की सीमा के पार गए बिना जो घटित होना चाहिए, वह नहीं होता, इसलिए कुछ क्षणों के लिए निर्विचार रहने का अभ्यास करो। उसे धीरे-धीरे बढ़ाओ। आंतरिक चेतना का प्रस्फोट इसी अवस्था में होता है।

मन की एक अवस्था है अमन। उस अवस्था का अनुभव ध्यान की एक विशिष्ट भूमिका है। उसका अभ्यास दृष्टिकोण को बदलने वाला होगा। उससे आत्मा की एक झलक मिलेगी।

लाडनूं
१ नवम्बर, १९९१

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

चक्षुष्मान् !

उसे देखो, जो सबको देखता है। चक्षु स्वयं को नहीं देखता, केवल दूसरों को देखता है। मानस चक्षु में क्षमता है इस चर्म चक्षु को देखने की। चक्षु खुला हो या बन्द, किसी भी मुद्रा में हो, उस पर मन को एकाग्र करो और उसके भीतर झांको। वह खिड़की है मस्तिष्क की। उससे भीतर गहरे तक झांको। चेतना मस्तिष्क तक पहुंच जाएगी। सावधानी आवश्यक है। एक साथ लम्बे समय तक यह प्रयोग मत करो। धीमे-धीमे उसे बढ़ाओ। एकाग्रता की साधना के लिए यह बहुत महत्त्वपूर्ण प्रयोग है।

चंचलता में जीभ और चक्षु—दोनों का हाथ है। चंचलता को कम करना चाहे, उसके लिए आवश्यक है—जीभ और चक्षु—दोनों को स्थिर करना सीखे।

एक संस्कृत कवि ने लिखा है—गुणी मनुष्य भी अपने स्वरूप की पहचान के लिए पर की अपेक्षा रखता है। दूसरों को देखने वाली आंख अपने आपको दर्पण के द्वारा ही देख पाती है।

दर्पण चक्षु के बाह्य आकार को प्रदर्शित कर देता है। उसकी गुणवत्ता को प्रदर्शित नहीं कर सकता। अंतश्चक्षु चक्षु के अतिशय को प्रकट करने में सक्षम है। बाह्य जगत् के साथ सम्पर्क स्थापित करने वाली इन्द्रियों में चक्षु प्रधान है। दृश्य जगत् मन को चंचल बनाने में सबसे अग्रणी है।

चक्षु द्रष्टा है। वह अपनी क्षमता से द्रष्टा नहीं है। उसके

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

भीतर द्रष्टा है चैतन्य । वह अगम्य है । उसे गम्य करने के लिए चाक्षुष केन्द्र का ध्यान एक सहज-सरल प्रयोग है ।

साधना के क्षेत्र में बहुत बार कहा जाता है—अपने भीतर झांको । बाहर वह कौन है, जो भीतर झांके ? चैतन्य भीतर है । वह भीतर ही है तो फिर क्या झांकें ? तर्कशास्त्र में आता है—सुशिक्षित नट-बटु भी अपने कंधे पर चढ़ने के लिए पटु नहीं है—

'सुशिक्षितोऽपि नटबटुः स्वस्कंधमधिरोढुं पटुः ।'

तलवार की तेज धार भी अपने आपको नहीं काट सकती—

'न हि सुतीक्ष्णाप्यसिधारा स्वं छेत्तुमाहितव्यापाराः ।'

फिर चैतन्य अपने आपको कैसे देखेगा ?

यदि इन्द्रियां स्रोत नहीं होती, चैतन्य उनके माध्यम से बाहर नहीं जाता तो भीतर झांकने का प्रश्न उपस्थित नहीं होता ।

भीतर झांकने का अर्थ है—जो चैतन्य इन्द्रियों के मार्ग से बाहर आकर पदार्थ जगत् में उलझ गया है, उसे फिर भीतर ले जाओ । बाहर आने वाली चैतन्य की रश्मियों को उस चैतन्य के सूर्य में विलीन कर दो, जहां चैतन्य ही चैतन्य है ।

लाडनूं
१ दिसम्बर, १९९१

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

चक्षुष्मान् !

बाहर देखो और भीतर देखो। देखने के ये दो रूप उलझन पैदा करते हैं। उलझन इसलिए है कि दोनों के बीच जो परदा है, उसे जानते नहीं। दरवाजा है और उस पर परदा है। दो कक्ष सहज बन जाएंगे—भीतरी कक्ष और बाहरी कक्ष।

दर्शन केन्द्र को जागृत करने का अभ्यास करो। यह जैसे-जैसे जागृत होगा, वैसे-वैसे परदे का बोध स्पष्ट होगा। एक दिन वह हट भी जाएगा, बाहर और भीतर की दूरी नहीं रहेगी।

तीसरा नेत्र, इस पद से तुम अपरिचित नहीं हो। इसकी आज पश्चिमी जगत् में बहुत चर्चा है। चर्चा से परे जो अचर्चित सत्य है, वह यह है कि दर्शन केन्द्र का स्थान एक बहुत बड़ी खिड़की है। वहां से बहुत कुछ देखा जा सकता है। वह मिलन-बिन्दु है प्राणधाराओं का।

आत्मा का शरीर के साथ मिलन कहां होता है ? उन मिलन-बिंदुओं की खोज काफी समय से होती रही है। नाभि (तैजस केन्द्र), भृकुटि (दर्शन केंद्र) और मस्तिष्क का ऊर्ध्व भाग (ज्ञान-केन्द्र)—ये आत्मा और शरीर के संगम-बिंदु माने जाते हैं।

चैतन्य विकास की दृष्टि से मस्तिष्क के बाद दर्शन केन्द्र का बहुत अधिक महत्त्व है।

तुम्हारा दृष्टिकोण सम्यग् बने। उसमें विधायक भाव की प्रधानता हो। तुम गहरी एकाग्रता के साथ दर्शन केन्द्र की उपासना

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

करो। कायोत्सर्ग की मुद्रा में बैठकर दीर्घश्वास का प्रयोग करो। ध्यान दर्शन केन्द्र पर जमाओ। श्वास का प्रयोग चलता रहे। ध्यान उसी पर जमा रहे। विचार अथवा विकल्प आएं, उनमें मत उलझो। उनकी प्रेक्षा कर लो और फिर दर्शन केन्द्र के ध्यान में ही अपने आपको नियोजित कर दो। आंतरिक जागरूकता रहे, कोई विचार या विकल्प आएगा तो टिक नहीं पाएगा। श्वास जितना लम्बा अथवा मंद होगा, सहज श्वास-संयम (कुम्भक) की स्थिति बनेगी। दर्शन केन्द्र का जागरण सहज बन जाएगा।

यह अभ्यास सापेक्ष है। अभ्यास धीरे-धीरे बढ़ाओ, जिससे ऊर्जा को सहन कर सको और लक्ष्य तक पहुंच सको।

लाडनूं
१ जनवरी, १९९२

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

चक्षुष्मान् !

आत्मा की आवाज सुनो। पहले परखो, कौनसी आवाज आत्मा की है, कौनसी नहीं। बहुत लोग कहते हैं—यह मेरी आत्मा की आवाज है। मन की आवाज को आत्मा की आवाज मानना भ्रांति है।

तुम पहचानो—प्रिय अप्रिय संवेदन से निकली हुई आवाज मन की आवाज है, आत्मा की नहीं। समता अथवा वीतरागता का स्वर फूटे, समझो—वह आत्मा की आवाज है।

तुम ललाट या अग्र मस्तिष्क की भाषा को समझो। उसकी संकेत लिपि को पढ़ो। वह कषाय का क्षेत्र (इमोशनल एरिया) है। वह उपशांत होता है, तब आत्मा ध्वनित होती है। वह उत्तेजित होता है तब निषेधात्मक भाव मन को मुखर कर देता है।

उसी ललाट के मध्य में एक केन्द्र है ज्योति केन्द्र। उसे गहरी एकाग्रता के साथ देखो। उस पर ध्यान केन्द्रित करो। वहां ज्योति किरण तुम्हारा स्वागत करने के लिए तैयार है।

वहां अनेक मर्मस्थान हैं। आत्मा के प्रदेश सघन बनकर अवस्थित हैं। उनके प्रकाश पर एक ढक्कन है। उस ढक्कन को खोलने का प्रयत्न करो। वह खुल सकता है। आवश्यकता है धृति की और स्मृति की।

शरीर के भीतर जो है, वह ज्ञात नहीं है। ज्ञात बहुत कम, अज्ञात बहुत अधिक। अज्ञात के क्षेत्र में प्रवेश करो। संयम का सहारा लो। बहुत कुछ मिलेगा। वह मिलेगा, जिसकी तुम्हें कल्पना नहीं है।

लाडनूं
१ फरवरी, १९९२

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

चक्षुष्मान् !

इस दुनिया में अनेक रहस्यपूर्ण वस्तुएं हैं। उनमें सर्वाधिक रहस्यपूर्ण है मस्तिष्क। उसके रहस्यों को जानने का यत्न किया गया, किया जा रहा है। जैसे-जैसे यत्न हो रहे हैं, रहस्य और गहराता जा रहा है। प्राणी के शरीर में एक सूक्ष्मतम शरीर है। उसका नाम है कर्म शरीर। सारे रहस्यों का सरजनहार वही है।

मस्तिष्क का एक भाग है अवचेतन (हाइपोथेलेमस), जो भाव चेतना के लिए उत्तरदायी है। विधायक भाव रहे, निषेधात्मक भाव सक्रिय न बने, इस स्थिति का निर्माण करने के लिए आवश्यक है अवचेतन का परिष्कार।

तुम शांतिकेन्द्र पर ध्यान करो, परिष्कार अपने आप होगा। मन और भाव की निर्मलता एकाग्रता के साथ जुड़ती है, परिष्कार की प्रक्रिया प्रारम्भ हो जाती है।

यह प्रयोग विवेक और धैर्य के साथ करो। आरम्भ में ही लंबे समय तक यह प्रयोग मत करो। इसकी समय-मर्यादा को धीमे-धीमे बढ़ाओ। ऊर्जा अथवा कुण्डलिनी को सक्रिय करना कठिन है। उससे भी कठिन काम है उसे झेलना, उसके ताप तथा उष्माजनित प्रवाह को सहन करना।

इस सचाई को मत भूलो—प्रयोगकाल में शरीर पूर्णरूपेण सीधा रहे। ऊर्जा का गति-प्रवाह वक्र न हो। उसकी वक्रता अनेक समस्याएं पैदा कर देती हैं। रोग को मिटाने वाला प्रयोग रोग का

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

कारक बन जाता है। इसीलिए योग साधना में बार-बार निर्देश दिया जाता है—शरीर का पृष्ठभाग, गर्दन—सब सीधे रहें।

समकायः समग्रीवः—इसकी स्मृति अनिवार्य है।

कषाय शमन, मानसिक शांति, चैतसिक विशुद्धि—इन सबके लिए शांति केन्द्र का ध्यान बहुत उपयोगी है। जितना उपयोगी उतना ही शक्तिशाली। शक्ति की सीमा को समझ कर इसका अभ्यास करो।

लाडनूं
१ मार्च, १९९२

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

चक्षुष्मान् !

आयुर्विज्ञान में पहले दो शब्द थे—नाड़ीतंत्र और ग्रन्थितंत्र। दोनों का कार्य पृथक्-पृथक् माना जाता था। अब इस मत में परिवर्तन आया है। नाड़ीतन्त्र और ग्रंथितंत्र का कार्य इतना असंपृक्त है कि उन्हें पृथक् नहीं किया जा सकता। एक नया शब्द प्रचलित हुआ है—नाड़ी-ग्रंथितंत्र।

मस्तिष्क का ऊर्ध्वभाग पिच्युटरी और पिनियल—इन दोनों ग्रन्थियों का प्रभाव क्षेत्र है इसलिए वह नाड़ी-ग्रंथितंत्रीय प्रवृत्तियों का केंद्रीय स्थल है। शरीर के अवयवों में इसका प्रमुख स्थान है। इस स्थान पर ध्यान केंद्रित करो। तंत्र और हठयोग की भाषा में यह सहस्रार चक्र है। प्रेक्षाध्यान की भाषा में यह ज्ञानकेंद्र है।

अतीन्द्रिय ज्ञान चेतना के केंद्रों में यह सर्वाधिक महत्त्वपूर्ण है। जैसे कोई पुरुष दीप को सिर पर रखकर चलता है तब दीप का प्रकाश चारों दिशाओं में फैलता है वैसे ही ज्ञानकेंद्र के जागृत होने पर चैतन्य का प्रकाश सब ओर व्याप्त हो जाता है।

शरीर में अनेक चैतन्य केंद्र हैं। सबसे अधिक चैतन्य केंद्र मस्तिष्क में हैं। सिद्धसेन गणि के शब्दों में मूर्धा बहुमर्मकः—मस्तिष्क अनेक मर्मस्थानों—चैतन्य केंद्रों वाला है। ज्ञान और क्रिया—दोनों के संचालक-तंतु मस्तिष्क में हैं इसलिए ज्ञानकेन्द्र पर चित्त को एकाग्र करो।

मस्तिष्क में सर्वाधिक जैविक विद्युत् या प्राणशक्ति है इसलिए

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

वह ऊर्जा का केंद्र भी है। ज्ञानकेंद्र पर एक साथ लम्बा ध्यान मत करो। धीरे-धीरे बढ़ाओ। एक साथ लम्बा ध्यान करने से ऊष्मा बहुत बढ़ जाती है। उसे सहन करना कठिन होता है। इसलिए ध्यान की कालावधि चिन्तनपूर्वक निर्धारित करनी चाहिए।

प्रारम्भ में पांच मिनट का ध्यान पर्याप्त है। फिर एक-दो सप्ताह के अंतराल से दो-दो मिनट और बढ़ाए जा सकते हैं। ज्ञान-केंद्र में ध्यान करने पर सहज ही मूलबन्ध होने लगे तो समझो—ध्यान प्रारम्भ हो गया है।

लाडनूं
१ अप्रेल, १९९२

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

चक्षुष्मान् !

तुम जानते हो—मैं आत्मा हूं। साथ-साथ यह भी जानो—मैं केवल आत्मा नहीं हूं। आत्मा और अनात्मा—पुद्गल दोनों का मिश्रण हूं। आत्मा केवल आत्मा हो तो वह पुद्गल से प्रभावित नहीं हो सकती। चेतना है इसलिए अनुभव करो—मैं आत्मा हूं और मैं प्रभावित होता हूं इसलिए अनुभव करो—मैं पुद्गल से जुड़ा हुआ हूं।

पुद्गल के चार गुण हैं—वर्ण, गंध, रस और स्पर्श। शरीर पुद्गल से बना हुआ है और मन भी पौद्गलिक है, इसलिए शरीर और मन पुद्गल से प्रभावित होते हैं।

वर्ण, गंध, रस और स्पर्श इष्ट भी होते हैं और अनिष्ट भी होते हैं। इष्ट वर्ण, गंध, रस और स्पर्श शुभ प्रभाव डालते हैं और अनिष्ट का प्रभाव अशुभ होता है।

प्राणी मात्र पर वर्ण, गंध, रस और स्पर्श का प्रभाव होता है। मनुष्य इनसे विशेष प्रभावित होता है। यह प्रभाव केवल स्थूल शरीर के स्तर पर ही नहीं होता, सूक्ष्म शरीर के स्तर पर भी होता है।

वर्ण प्रकाश का एक (उनचासवां) प्रकंपन है। तैजस शरीर विद्युत् का शरीर है। उसके प्रकंपन आभामंडल का निर्माण करते हैं।

भावधारा और वर्ण—दोनों में रहस्यात्मक सम्बन्ध है। इस सम्बन्ध को समझने का प्रयत्न करो। जैसे-जैसे यह रहस्य प्रगट होगा, साधना के नए आयाम खुलते जाएंगे।

लाडनूं
१ मई १९९२

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

चक्षुष्मान् !

तुम अनुभव करो—भावधारा कभी संक्लिश्यमान और कभी विशुद्धयमान होती है। वह सदा एकरूप नहीं रहती। प्रमाद की अवस्था आती है, भावधारा संक्लिश्यमान हो जाती है। अप्रमाद घटित होते ही वह विशुद्ध बन जाती है।

भावधारा के परिवर्तन के साथ-साथ आभामण्डल का रंग-रूप भी बदलता है। भावधारा पवित्र होती है, आभामण्डल उजला और निर्मल हो जाता है। वह अपवित्र होती है, आभामण्डल अंधकार जैसा बन जाता है। इसका प्रभाव शरीर पर ही नहीं होता, मन पर भी होता है।

यह प्रश्न शारीरिक स्वास्थ्य और मानसिक स्वास्थ्य—दोनों से जुड़ा हुआ है।

भावधारा की पवित्रता, मानसिक शुद्धि के लिए ही आवश्यक नहीं है, शारीरिक स्वास्थ्य के लिए भी आवश्यक है।

तुम अभ्यास करो—अधिक समय भावशुद्धि रहे। जागरूकता बढ़ी, भावशुद्धि बढ़ेगी। जागरूकता कम हुई, भावशुद्धि कम हो जाएगी। सब कुछ अभ्यास पर निर्भर है।

प्रेक्षाध्यान का प्रयोजन है भावक्रिया का विकास, जागरूकता का विकास। श्वास को देखना, शारीरिक प्रकंपनों को देखना, रंगों को देखना—प्रेक्षा के ये सारे प्रयोग इसीलिए हैं कि जागरूकता बढ़ जाए।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

चेतना पर आवरण कम हो और मूर्च्छा टूटे, ध्यान का प्रथम उद्देश्य है। इसका गहराई से अनुभव करो। यह अनुभव ही अध्यात्म की उच्च भूमिका की ओर ले जाएगा।

लाडनूं
१ जून, १९९२

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

चक्षुष्मान् !

संक्लिश्यमान भावधारा शरीर की रासायनिक व्यवस्था पर विध्वंसक प्रभाव डालती है। मनोविज्ञान की भाषा में वह भावधारा नकारात्मक भाव है। यदि नकारात्मक भाव शरीर की रासायनिक व्यवस्था को अस्त-व्यस्त कर देते हैं तो क्या विशुद्धमान भावधारा अथवा सकारात्मक भाव रोगहर नहीं हो सकते ?

यदि प्रतिकूल संवेग (नकारात्मक भाव) शरीर की भीतरी रक्षा-पंक्ति को तोड़ने के निमित्त बनते हैं तो क्या अनुकूल संवेग (विधायक भाव) उसे सुदृढ़ नहीं बना सकते ? क्रोध और चिंता के भाव प्रबल बनते हैं तब हरपीज (Herpes) सिम्पलैक्स वायरस (Simplex Virus) रोग-प्रतिरोध-प्रणाली को छिन्न-भिन्न कर देते हैं तो क्या क्षमा, मैत्री और चिंता-मुक्त मनोभाव रोग प्रतिरोध की क्षमता को विकसित नहीं कर सकते ?

रोग-प्रतिरोध-प्रणाली के कमजोर होने पर ही विषाणु और जीवाणु आक्रमण कर पाते हैं। उसे कमजोर बनाने में प्रतिकूल संवेगों अथवा संक्लिश्यमान भावधारा का प्रमुख हाथ है।

शारीरिक स्वास्थ्य के संदर्भ में भी अप्रशस्त और प्रशस्त लेश्या का मूल्यांकन करो। प्रशस्त लेश्या की दिशा में अपने आप गति होगी।

शारीरिक स्वास्थ्य और भावधारा में घनिष्ठ सम्बन्ध है। इसकी व्याख्या केवल धर्मशास्त्र ही नहीं कर रहे हैं, विज्ञान भी

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

कर रहा है। किस भावधारा से स्वास्थ्य पर प्रतिकूल प्रभाव पड़ता है, कौन-कौन-से रोग उत्पन्न होते हैं, यह शोध का विषय बना हुआ है।

तुम अध्यात्म के अनुसंधित्सु हो। कितना अच्छा हो, इस विषय में अनुसंधान करो! इसका प्रतिपादन कर सको कि यह रोग अमुक संक्लिश्यमान भावधारा के कारण उत्पन्न हुआ है और इस विशुद्धयमान भावधारा का प्रयोग करो, रोग आरोग्य में बदल जाएगा।

लाडनूं
१ जुलाई, १९९२

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

चक्षुष्मान् !

तुमने वन देखे हैं। वन में वृक्ष हैं। उन वृक्षों की अधिक सुरक्षा है, जो मूल्यवान् फलों से लदे रहते हैं।

तुम अनुभव करो—ध्यान का वह तरु सुरतरु बन जाता है, जिस पर स्वभाव-परिवर्तन के फल लगते हैं। ध्यान चले और स्वभाव जैसा का तैसा रहे, रत्तीभर भी परिवर्तन न आए, उसका मूल्य भी कम और सुरक्षा भी कम।

स्वभाव परिवर्तन का सूत्र है—भाव विशुद्धि और अनुप्रेक्षा। कोई व्यक्ति भय के संवेग से पीड़ित है। डरना उसका स्वभाव बन गया। वह दिन में भी डरता है, रात को भी डरता है। समूह में भी डरता है, अकेला भी डरता है। भय का हेतु होने पर भी डरता है और न होने पर भी डरता है।

भय बाहर से नहीं आता, वह भीतर से फूटता है। इस संवेग से आक्रांत व्यक्ति अभय होना चाहता है, भय के स्रोत को बन्द कर देना चाहता है। यह कैसे संभव बने ?

मनश्चिकित्सक मानसिक प्रशिक्षण की विधियों और शामक औषधियों के द्वारा उसकी चिकित्सा करते हैं। कुछ लाभ भी होता है। भय के स्पन्दन भीतर में हैं। औषधियां कुछ समय के लिए उन स्पंदनों को निष्क्रिय कर देती है, किन्तु औषधियों का प्रभाव समाप्त होते ही स्पन्दन फिर सक्रिय हो जाते हैं।

भाव विशुद्धि के स्पन्दन उत्पन्न करो, अभय की अनुप्रेक्षा

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

करो। उससे भय के स्पन्दनों का उपशमन नहीं, परिवर्तन हो जाएगा।

भाव विशुद्धि का एक महत्वपूर्ण सूत्र उत्तराध्ययन सूत्र में उपलब्ध है—**भावविसोहिं काऊण निब्भए भवति**—भयभीत मनुष्य भाव विशुद्धि का प्रयोग कर अभय बन जाता है।

भाव एक जैसा नहीं रहता, बदलता रहता है। कभी विधायक और कभी निषेधात्मक। कभी शुद्ध और कभी अशुद्ध।

विधायक भाव की पुष्टि के लिए अनुप्रेक्षा का प्रयोग आवश्यक है। अनुप्रेक्षा के बिना प्रेक्षा का चित्र अधूरा है। तुम अनुप्रेक्षा का यथार्थ मूल्य आंको।

लाडनूं
१ अगस्त, १९९२

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

चक्षुष्मान् !

अनुप्रेक्षा का मूल सूत्र है तन्मयता। जो इष्ट है, जो पाना चाहते हो, उसके साथ तादात्म्य स्थापित करो, तन्मय बनो। जिस शब्द को दोहरा रहे हो, उसकी अर्थात्मा के साथ तन्मय बनो। परिणमन शुरू होगा।

तुम परिणमन के साथ जीते हो। जिस वस्तु के साथ सम्पर्क स्थापित होगा, जिससे तुम प्रभावित बनोगे, वैसा परिणमन शुरू हो जाएगा।

द्रव्य का जगत् बहुत छोटा है। पर्याय का जगत् बहुत बड़ा है। हर परिणमन एक पर्याय का निर्माण करता है। आदमी वह होता है, जो उसका पर्याय होता है।

तन्मयता के सिद्धान्त को मनोविज्ञान की भाषा में अचेतन मन (अनकॉन्शियस माइण्ड) तक अपनी बात पहुंचाना कहा जाता है। अनुप्रेक्षा का आशय केवल शब्दों का पुनरावर्तन नहीं है। उसका आशय है—शब्द में जिस अर्थ का सन्निवेश किया है, वैसी अनुभूति करना।

सहिष्णुता की अनुप्रेक्षा करो और उसके साथ तादात्म्य स्थापित न हो तो सहिष्णुता का विकास कम संभव बनेगा। शब्दोच्चारण के साथ सहिष्णुता की अनुभूति जागे।

अनुप्रेक्षा का प्रेक्षा के साथ गहरा अनुबन्ध है। प्रेक्षा का अभ्यास परिपक्व हो तब अनुप्रेक्षा सम्भव बनती है। अनु शब्द सार्थक

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

भी है। प्रेक्षा के बाद होने वाली प्रेक्षा—अनुप्रेक्षा—गहरी एकाग्रता का अभ्यास। वह एकाग्रता ही तन्मयता को जन्म देगी और तन्मयता सफलता को। असफलता का कोई हेतु नहीं है यदि तादात्म्य की बात समझ में आ जाए।

लाडनूं
१ सितम्बर, १९९२

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

चक्षुष्मान् !

तुमने पढ़ा—अनुप्रेक्षा का मूल स्रोत है तन्मयता। तन्मय होना बहुत बड़ी कला और बहुत बड़ी साधना है। आचार्यश्री तुलसी तन्मयता के सिद्धांत का प्रायोगिक निदर्शन हैं। वे अपने जीवन में बहुत सफल हुए हैं। इतने सफल कि बहुत कम लोग हो पाते हैं। उसका कारण तुम खोजोगे उनकी प्राणशक्ति में, मनोबल में और भाग्य में। वह खोज सत्य से परे भी नहीं है, किन्तु इस खोज में तुम्हें वह सत्य नहीं मिलेगा, जो प्राणशक्ति, मनोबल और भाग्य के लिए एक वातावरण का निर्माण करता है। वह सत्य उनकी तन्मयता की खोज में ही उपलब्ध होगा। वे तन्मय होना जानते हैं। जो कल्पना करते हैं, उसके साथ अभिन्न हो जाते हैं, तन्मय बन जाते हैं। यह तन्मय-ध्यान का प्रयोग ही उनकी प्राणशक्ति को प्रकम्पन देता है, मनोबल को ऊर्जा देता है और भाग्य को असीम अंतरिक्ष देता है।

अनुप्रेक्षा करो। उस महापुरुष को सामने रखो। उसके जीवन के हर वातायन को खोलो। भीतर झांको। सत्य का दर्शन होगा। तन्मय अथवा तद्रूप होकर ही कोई महान् पर्याय का निर्माण कर सकता है।

कुछ व्यक्ति जन्म लेकर योग की साधना करते हैं और कुछ व्यक्ति सिद्धयोगी होकर जन्म लेते हैं। कोई भी हो, आखिर तन्मयता के बिना सफलता के द्वार को नहीं खोल सकता। यदि तुम सफलता

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

के द्वार तक पहुंचना चाहते हो, तो अनुप्रेक्षा करो, उसके आधारभूत सूत्र को गहराई से समझो और उसका प्रयोग करो।

लाडनूं
१ अक्टूबर, १९९२

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

चक्षुष्मान् !

शरीर में आत्मा है, चैतन्य है। वह चैतन्य पूरे नाड़ीतंत्र में व्याप्त है इसलिए नाड़ीतंत्र की हर कोशिका सचेतन है। वह आदेश को मानती है और उसके अनुसार बदलती है।

अनुप्रेक्षा में आदेश, संदेश अथवा सुझाव का बहुत मूल्य है। अपने आपको सुझाव दो। कोशिकाओं के साथ मैत्री-संबंध स्थापित करो। वे तुम्हारे आदेश को स्वीकारेंगी। यह स्वीकृति व्यवहार परिवर्तन के लिए बहुत उपयोगी बन पाएगी।

ज्ञान और आचरण अथवा कथनी और करनी की दूरी को मिटाने के लिए प्रेक्षा के संदेश-सूत्रों को दोहराओ—

प्रेक्षा श्रद्धां यायात्
श्रद्धा वीर्यं यायात्
वीर्यं चरणं यायात्
अंतर्भवि मे
चिन्तायां मे
आचरणे मे
व्यवहार मे
समता भूयात् समता भूयात्
नव सूर्यो मे उदयं यायात्
उदयं यायात्
तेजोलेश्या उदयं यायात्
उदयं यायात।

लाडनूं
१ नवंबर, १९९२

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

३१

चक्षुष्मान् !

प्रेक्षा और अनुप्रेक्षा—दोनों साधन हैं, साध्य नहीं हैं। साध्य है राग-द्वेष मुक्त चेतना का जागरण।

यह मत सोचो कि चेतना एक क्षण में राग-द्वेष मुक्त हो जाएगी। यह सोचो—राग-द्वेष मुक्त चेतना का एक क्षण भी दिशा बदल देगा।

राग-द्वेष युक्त चेतना की निरन्तरता का विच्छेद करना क्या कोई छोटी घटना है ? बहुत बड़ी बात है इसे अनुभव करना। उस क्षण में ही आत्म-दर्शन होता है, अपने आपको देखने की सार्थकता घटित होती है।

आत्म-दर्शन और आत्म-निरीक्षण—ये दोनों अहिंसा के वैयक्तिक स्तर हैं। तुम अपने आपको देखकर ही अहिंसा की अनुभूति में उतर सकते हो। अहिंसा कोई बाहर से आने वाली वस्तु नहीं है। वह आंतरिक चेतना का विशिष्ट जागरण है।

आत्म-निरीक्षण के द्वारा व्यक्ति अपने कृत कार्यों की समीक्षा करता है, मीमांसा करता है, अपने आपको जानने-पहचानने का प्रयत्न करता है। यह अपना संबोध ही चेतना के नव उन्मेष का हेतु बन जाता है।

आत्म-दर्शन और प्रेक्षा—दोनों को एक तराजू से तोलो। अनुप्रेक्षा और आत्म-निरीक्षण के मध्य भेदरेखा मत खींचो। कार्य-कारण की अभेददृष्टि ही तुम्हें साधन से साध्य तक पहुंचा

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

पाएगी। साधन और साध्य की दूरी लक्ष्य-पूर्ति में कभी सहायक नहीं बनती।

लाडनूं
१ दिसम्बर, १९९२

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

३२

चक्षुष्मान् !

अनुभव करो—आध्यात्मिक चेतना जागृत होती है, द्वन्द्वात्मक चेतना समाप्त हो जाती है। द्वंद्वात्मक चेतना का परिणाम है तनाव। आध्यात्मिक चेतना का परिणाम है तनाव मुक्ति।

सामाजिक जीवन में तनाव उपयोगी माना जाता है। यदि तनाव न हो तो सामाजिक अन्यायों का प्रतिकार ही नहीं किया जा सकता। इस तर्कात्मक भाव ने तनाव को प्रोत्साहन दिया है।

आध्यात्मिक अनुभव इससे भिन्न है। अन्याय का प्रतिकार करने के लिए तनाव आवश्यक नहीं है। बहुत बार तनाव सम्यक् प्रतिकार में बाधा डालता है।

तनाव में छूत का खतरा बढ़ जाता है। छूत से रक्षा करने वाली रोग-प्रतिरोध प्रणाली मस्तिष्क के नियंत्रण में है। मस्तिष्क की क्षमता को बढ़ाओ। तनाव कम होगा, रोग प्रतिरोधक शक्ति बढ़ेगी।

मस्तिष्कीय क्षमता को बढ़ाने का महत्त्वपूर्ण सूत्र है—इच्छाशक्ति का विकास। जैसे-जैसे इच्छाशक्ति प्रबल होती है वैसे-वैसे मस्तिष्कीय क्षमता का विकास होता है। भौतिक स्पर्धा इच्छाशक्ति को घटाती है। स्पर्धा से बचो। इच्छाशक्ति को विकसित करो। आध्यात्मिक चेतना को जागृत करने में उसका उपयोग करो। एक नई अनुभूति का द्वार खुल जाएगा।

चाड़वास
१ जनवरी, १९९१

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

चक्षुष्मान् !

ध्यान केंद्रित करो और देखो—मन की चंचलता कितनी कम हुई है, भावक्रिया का अभ्यास कितना परिपुष्ट हुआ है। 'प्रत्येक कार्य को जानते हुए करो, यह निर्देश सुना है, इसका मूल्यांकन भी किया है, किंतु चंचलता की स्थिति में इसकी अनुपालना नहीं हो सकती। इसकी अनुपालना की भूमि है—एकाग्रता का विकास।'

भावक्रिया जागरूकता की विशिष्ट अवस्था है। जागरूकता और एकाग्रता में घनिष्ट संबन्ध है, इसलिए सर्वप्रथम एकाग्र होने की साधना करो।

एकाग्र होना सरल नहीं है तो असंभव भी नहीं है। जो संभव है, उसके लिए पुरुषार्थ किया जा सकता है। जितनी श्रद्धा, जितना पुरुषार्थ, उतनी सफलता।

पुरुषार्थ के साथ विधि को जोड़ो। विधि से किया हुआ कार्य पुरुषार्थ की अल्पता में भी सिद्ध हो जाता है। विधि के अभाव में किया जाने वाला कार्य पुरुषार्थ की प्रबलता में भी सिद्ध नहीं होता।

विधि का पहला पाठ है—कायगुप्ति। शरीर की प्रवृत्ति का जितना निरोध कर सको, करो। अपने भीतर झांको, निस्पन्द रहो। शरीर की चंचलता को छोड़ो। स्थिरता का अनुभव हो। यह अनुभूति एकाग्रता की दिशा में ले जाएगी। यह आरोहण का बिंदु है। इसे पकड़कर तुम आरोहण कर सकोगे।

बीदासर
१ फरवरी, १९९३

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

जीवन विज्ञान ग्रंथ-माला में प्रकाशित अन्य पुस्तकें

१. प्रेक्षाध्यान : मौलिक तत्त्व : आधार और स्वरूप
२. प्रेक्षाध्यान : शरीर-विज्ञान (भाग १)
३. प्रेक्षाध्यान : स्वास्थ्य-विज्ञान (भाग १)
४. प्रेक्षाध्यान : स्वास्थ्य-विज्ञान (भाग २)
५. प्रेक्षाध्यान : कायोत्सर्ग
६. प्रेक्षाध्यान : श्वास-प्रेक्षा
७. प्रेक्षाध्यान : शरीर-प्रेक्षा
८. प्रेक्षाध्यान : चैतन्य-केन्द्र-प्रेक्षा
९. प्रेक्षाध्यान : लेश्या-ध्यान
१०. प्रेक्षाध्यान : अनुप्रेक्षा
११. प्रेक्षाध्यान : आसन और प्राणायाम
१२. प्रेक्षाध्यान : प्राण-विज्ञान
१३. प्रेक्षाध्यान : प्राण-चिकित्सा
१४. प्रेक्षाध्यान : यौगिक क्रियाएं
१५. प्रेक्षाध्यान : सिद्धान्त और प्रयोग

BOOKS ON "SCIENCE OF LIVING" SERIES

Preksha Dhyana : Basic Principles
Preksha Dhyana : Perception of Breathings
Preksha Meditation : An Introduction
Preksha Dhyana : Human Body
(Part I : Physiology and Anatomy)
Preksha Dhyana Human Body
(Part II : Health Care)
Preksha Dhyana : Perception of Psychic Centres
Preksha Dhyana : Self-Awareness by Relaxation
Preksha Dhyana : Contemplation and Auto-Suggestion
Preksha Dhyana : Perception of Phychic Colours
Preksha Dhyana : Theory and Practice
Preksha Dhyana : Therapeutic Thinking

सम्पर्क-सूत्र
जैन विश्व भारती
लाडनूं-३४१३०६

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org